धर्मराज

देवेंद्र

धर्मराज

साँझ का समय है। दिन भर तक थकाने वाली आफिसों की हाँव-हाँव, किच-किच, ऊपर से बाजार का शोर। चारों ओर एक अस्त-व्यस्त माहौल है। लेकिन शहर की

भव्यतम कालोनी में सन्नाटा घिर चुका है। कुछ महीनों पहले छोकरे यहाँ की सड़कों पर तबीयत हरी करने के लिए टहलते रहते थे और सुंदरियाँ! वे अपने खुले हुए घने लंबे बालों को बिखरा कर रात को आमंत्रण दिया करती थीं। लेकिन सब बीते दिनों की बातें हैं। और अब सबकी याद करके भी आप क्या कर लेंगे। उस टी.वी. को तो रोक नहीं लेंगे। जिसके सामने बैठकर बच्चे, बच्चे कम पैदा करने की नसीहत सीख रहे हैं। वह लॉन जहाँ अभी कुछ ही दिन पहले देर रात तक लड़के खेला करते थे, वहाँ कुछ रिटायर्ड बूढ़े अपनी छड़ी रखकर बैठे हुए एक दूसरे को घूर रहे हैं। 'बहुएँ' इनका मुख्य अंतर्विरोध। चुप्पी सबसे बड़ी मजबूरी। इनका गुजरा जमाना इनकी सबसे झूठी और हसीन यादें हैं। समय एक विराट पहाड़ की तरह इनकी आँखों में झूल रहा है। जिसे ढोते हुए ये अपने जीने की खुशी ढूँढ़ रहे हैं। और इस तरह एक-दूसरे को घूर रहे हैं। यह सब देखता सोचता, जाने क्या-क्या सोचता और डरता हुआ धर्मराज इस समय बेहद उदास घर की ओर जा रहा है। भला हो, बुरा हो, चाहे जैसा भी हो घर, घर ही होता है, जहन्नुम नहीं। लेकिन उसके लिए घर और जहन्नुम के बीच का फर्क मिट चुका है। इस आशंका से भरा हुआ कि कहीं कोई देख न ले, वह चश्मे के भीतर अपनी नरम-नरम आँखें पोंछता है। कई अरसे गुजर गए इन आँखों से उससे कभी रोया नहीं गया। और हँसने की बात तो उसे लड़कपन के दिनों की बेवकूफी लगती है।

आप सबको जिज्ञासा हो सकती है कि आखिर यह धर्मराज है क्या चीज? इसे मैं कब से और कैसे जानता हूँ? लेकिन यह सब एकदम सही-सही बता पाना मेरे लिए असंभव सा है। बस इतना जान लीजिए कि यह अक्सर मुझे सुबह-दोपहर-शाम, जब भी बिजली का बिल जमा करने जाता हूँ, नौकरी के लिए या ऑफिस में किसी काम के लिए अर्जी देने जाता हूँ, यह वहीं मिल जाता है। कभी क्लर्क की शक्ल में ऑफिस के मेज पर पैर फैलाए पान घुलाकर ज्योतिष, सेक्स या राजनीति जैसे विषयों पर एकाधिकार प्राप्त विशेषज्ञ की हैसियत से बात करता है तो कभी साहब का चपरासी बनकर और कभी साहब के ही वेष में। इन तरह-तरह के रूपों में उसकी एक ही बात होती है - पैसा। पेशे और पद के मुताबिक रिरियाकर या डाँटकर।

बहरहाल, आज मुझे एकदम नए रूप में मिला था। मैंने देखा कि धर्मराज बाबा सतीशानंद महाविद्यालय के प्राचार्य की कुर्सी पर बैठा है। उसे वहाँ देखकर कुछ भय और कुछ अचरज से मैं ऐसा भर गया कि मेरा समूचा शरीर थरथर काँपने लगा। ऑफिस के बाहर लड़कों की भारी भीड़ हाथों में जूते और चप्पल लेकर नारे लगा रही थी। किसी प्रोफेसर अग्रवाल ने घर पर काम करने वाली किसी नौकरानी के साथ कुछ कर दिया था। लड़के उन्हीं को सस्पेंड करने की माँग पर डिस्को कर रहे थे। बगल वाले

हॉल में अध्यापक संघ की मीटिंग अपने वर्गीय हितों को ध्यान में रखते हुए बेहद उत्तेजित थी। उनका एक प्रतिनिधि धर्मराज के पास आया और यह बताकर चला गया कि लौंडों की बात में आए तो परिणाम सोच लीजिएगा। हम कक्षाओं का सामूहिक बहिष्कार करेंगे। आमरण अनशन पर बैठेंगे। और प्रोफेसर अग्रवाल की अप्लीकेशन है। मेडिकल लीव ग्रांट कर दीजिए। धर्मराज बेहद परेशान कुछ समझ नहीं पा रहा है। एक पुलिस का सिपाही मंसाराम उसे समझा रहा है। - 'साहब अनिश्चितकालीन बंद कर दीजिए। सस्पेंड करेंगे तो फिर अध्यापक संघ का नया बवाल। छात्रों का मन बढ़ेगा। फिर किसको-किसको सस्पेंड करेंगे? वैसे भी अग्रवाल सत्ता पार्टी का है। दिल्ली गया है।'

लड़कों की भीड़ कलेक्टर के बंगले की ओर बढ़ चली। इधर जबसे समकालीन कवियों में नारेबाजी की प्रवृत्ति बढ़ी है तबसे लड़कों ने नारों को काव्यमय, नृत्यमय और संगीतमय कर दिया है। यह जुलूस है या जलसा? नारे गूँज रहे हैं - 'जो हमसे टकराएगा, चूर-चूर हो जाएगा।' रास्ते में एक ठेलावाला मिला। चूर-चूर हो गया। एक बुढ़िया खोमचे में मूँगफली बेच रही थी। एक ही लात में चूर-चूर हो गई। अब सरापते हुए सड़क पर बिखरी मूँगफली बीन रही है। एक रिक्शे पर आ रही दो लड़कियाँ टकरा गईं। अब उनका दुपट्टा पतंग की तरह हवा में लहरा रहा है।

इस तरह कॉलेज का बवाल शहर की तरफ गया। धर्मराज ने चैन की साँस ली। अनुशासन और व्यवस्था की गरज से बाहर निकला। मैदान में कुछ लड़के और लड़कियाँ घास के तिनके टूँग रहे थे। वहीं उसकी मुलाकात मुझसे हुई। ऑफिस में बुला ले गया और बिना मेरी तरफ देखे एक पर एक कई फाइलें पलटने लगा। अपनी तरफ मुखातिब होने की प्रतीक्षा करते हुए मैं सोच रहा था कि हमेशा भीड़ में घिरा धर्मराज मैथिलीशरण गुप्ता की कविता होता है, लेकिन अकेले होते ही अज्ञेय का गद्य बन जाता है। मतलब के दर्शन से भरा, रहस्यमय और अबूझ। और तब उसने पूछा - 'कहो भाई, कैसे आए हो?'

मैंने बताया - 'वैसे ही साहब, जैसे हर बार आता हूँ।'

'सो तो है, लेकिन कोई काम जो ठोस हो, बताओ।'

अब वह ऐसा कह रहा था उस समय उसकी आँखें मेरी पाकिट पर टिकी हुई थीं। पाकिट अपनी असहायता और अकेलेपन की वजह से बेवजन हिल रही थी।

धर्मराज माहिर आदमी है। उसे मेरी औकात का अंदाजा लगाने में पल-भर भी देर नहीं लगी। जब मैंने काम बताया तो वह काफी गंभीर हो गया। बोला - 'सो तो है, लेकिन इस पद के लिए महाशंकर उपाध्याय आए थे। हालाँकि उनकी योग्यता थोड़ी मद्धिम जरूर है। लेकिन तुम तो जानते ही हो, मानवीय रिश्तों के प्रति मैं लाचार हो जाता हूँ। पद्मश्री प्राप्त बाप की तेरहवीं संतान हैं। इतने दिनों से दर-दर भटक रहे हैं। उनकी पहली बीवी जलकर... इतना कहते-कहते अचानक धर्मराज रुक कर छत की ओर देखने लगा और अपनी बीवी के बारे में सोचने लगा - रोज बनारसी साड़ी की फरमाइश। न मिलने पर भाग जाने की धमकी। धर्मराज सोचा करता कि अब भाग जाने में धरा भी क्या है। वह बहुत ही निरीह आँखों से बिना कुछ बोले दो मिनट तक मेरे चेहरे की ओर देखता रहा और धीरे से बोला - 'मेरी पत्नी को मिठाई बहुत अच्छी लगती है।'

मैं खुश हो गया - 'हाँ साहब, अच्छी औरतें मिठाई जरूर खाती हैं। मेज पर झुक आया लगभग निश्चेष्ट सा धर्मराज वैसे ही मेरी ओर देखता रहा। उसने फिर धीरे से पूछा - 'आप बुरी औरतों की सोहबत में रहे हैं क्या? वे क्या खाती हैं?'

मैंने बताया - 'नहीं साहब, मैं कभी नहीं रहा। मुझे नहीं मालूम वे क्या खाती हैं। लेकिन कोई बात नहीं साहब, मैं शाम को मिठाई लाऊँगा।'

धर्मराज पुनः तन गया और बोला - 'उसकी कोई जरूरत नहीं। मैं लाचार हूँ मानवीय रिश्तों के लिए। यह दुनिया है। इसके सामने मैं हूँ। लोग मेरे नाम की सार्थकता से कुछ तो संतोष करें।'

हर गरजमंद अंधा होता है। दुनिया को नहीं देखता। सो इतने के बाद भी मैंने अर्जी बढ़ा दी और उसमें मौखिक रूप से एक वाक्य और जोड़ दिया - 'साहब, मैं बड़ी उम्मीद से आया हूँ। यह शिक्षण संस्था है। आप इसकी कुर्सी पर हैं और आपका इतना सुंदर नाम है।'

धर्मराज ने कहा - 'सो तो है, लेकिन तुम इस कुर्सी की बात कर रहे हो, जो लगातार हिल रही है। प्रबंध-तंत्र एक ओर खींच रहा है तो अध्यापक संघ दूसरी ओर। छात्र तो छात्र ही हैं, चपरासी और क्लर्क तक इसी कुर्सी के पीछे हैं। लोग सोचते हैं कि मैं इस पर बैठा हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि किस तरह इसके चारों पाए के नीचे मेरा सब कुछ दब चुका है। मेरी इज्जत, मेरा सम्मान, मेरा रुपया। कुर्सी मेरे ऊपर बैठी है। मैं सामने वाले को कहना चाहता हूँ - हरामी और कह जाता हूँ - माई-बाप।' अचानक वह एकदम रुआँसा हो गया और कहने लगा - 'और तो और, अब यह कुर्सी भी इतनी बे-गैरत हो

चुकी है कि न पकड़ी जाती, न छोड़ी जाती। मेरी जरूरतों से परे मेरी आदत बन चुकी कुर्सी मेरी मजबूरी है। लोग चारों ओर से खींच रहे हैं। बैठता हूँ तो लगता है कि भूचाल आ गया। दिमाग चक्कर खाने लगता।'

मैंने देखा कि इतना कहते-कहते वह विद्रूप हो गया। उसके भीतर की कातरता और समूची दुनिया के लिए गहरी नफरत एक साथ चेहरे पर चिपक गई है। मुझे लगा कि उसकी आँखें किसी मुर्दे की तरह टँगी हुई हैं और उनमें से मरते हुए किसी पुराने रोगी की चीख उभर रही है - 'ओह, तुम जान पाते कि कुछ कुर्सियाँ मात्र आदमी को नपुंसक बना देती हैं। और सबसे भयानक बात तो यह है कि वह जान भी नहीं पाता और खुश रहता है।'

मैंने कहा - "खैर साहब, यह तो दूसरी बात है। और इसमें मैं क्या कर सकता हूँ। मैं बस न्याय की उम्मीद में आया हूँ।' और चला आया।

बाहर धूप थी। हवा थी। लॉन की हरी दूब पर एक गौरैया फुदक रही थी। भीतर की ऊब और घुटन से निकलकर मैंने महसूस किया कि यहाँ एक मोहक और आत्मीय एकांत है। एक लड़की एक लड़के से कह रही है - 'हाय, तुम कितने अच्छे लगते हो।' लड़का बर्फ की तरह पिघल रहा है। मुझे लगा कि फूलों के बीच से निकलकर हवा का एक झोंका पूरे वातावरण में फैल रहा है। अचानक तभी मेरे सामने धर्मराज का चेहरा घूम गया।

मैं सड़क पर चला आया। मेरा दिमाग किसी भारी चीज से दबा जा रहा था। मैंने टटोल कर देखा तो वहाँ एक सवाल हिल रहा था - आखिर धर्मराज घूस क्यों लेता है**?**

दुकान पर आकर मैंने चाय पी। सिगरेट सुलगाया। सिर को झटका दिया ताकि कुछ हल्का महसूस कर सकूँ। लेकिन तब तक मेरे समूचे जेहन में चीलरों की तरह छोटे-छोटे कई सवाल चिपक गए थे - आखिर इस धर्मराज का ओर-छोर कहाँ है? इसके नाम और काम में इतना भेद क्यों है? और यह धर्मराज घूस क्यों लेता है?

मैं जब नौकरी के लिए ऑफिस तक गया था तब एक अच्छा-खासा समूचा आदमी था, लेकिन लौटने तक मेरे शरीर का कोई हिस्सा टूट कर गिर चुका था। देह में भयानक जलन पैदा करती हुई खुजली हो रही थी। आँखों के सामने अँधेरा नाच रहा था। किसी भयावह और अँधेरी खड्ड में गिरा हुआ सा मैं निकलने की हर कोशिश में एक-एक कदम गिरता जा रहा था। अपनी चीख सुनने वाला मैं अकेले ही छटपटा रहा था। मैं सोच रहा था कि दफ्तर से कचहरी तक, चौराहे से गली तक फैले इस धर्मराज के

कितने रूप हैं? और क्या अब यह सरस्वती के मंदिर में भी पुजारी बन बैठा? तभी मुझे लगा कि असंख्य कुँआरी लड़कियाँ, जो इस मंदिर में कुछ पाने की गरज से आई हैं, किसी बलात्कारी के पंजे में दबी हुई न चीख रही हैं, न छटपटा रही हैं। प्रकाशन केंद्रों में बैठकर पाठ्यक्रम बना रहे हत्यारों का गिरोह बनियों के बिस्तर सजा रहा है। युवा पीढ़ी बेरोजगारी पर निबंध रटकर सपनों के गुब्बारे फुला रही है। एक प्रहसन बहुत ही शांत और ठंडे तरीके से आहिस्ते-आहिस्ते चल रहा है। शेयर बाजार से लहूलुहान होकर लौटा हुआ बजट नींद की गोलियाँ बेच रहा है। तीसरे विश्वयुद्ध से आशंकित बुद्धिजीवी वर्ग सरल को जटिल और जटिल को सरल किए जा रहा है। लोग अपने-अपने काम में लगे हैं और जानते तक नहीं।

सड़क पर चलते हुए मैंने अपने एक मित्र से कहा - 'अगर हम लोग ऐसे ही रहे तो यह धर्मराज जल्दी ही अश्वमेध की तैयारी कर देगा, इसलिए कलम से कुदाल तक, लाठी से सवाल तक कुछ न कुछ जरूर उठा लेना चाहिए।'

वह देर तक मेरी आँखों में देखता रहा और बोला - 'हताशा हमारी पीढ़ी का स्थायी भाव है। मैं तुम्हारे विश्लेषण से सहमत हूँ। नतीजे से नहीं। रंडियों के मुस्कराने से शहर बे-पानी थोड़े हो जाता है। फिर भी बच्चों को उधर जाने से रोकना चाहिए। और चौकसी भी जरूरी है।'

मैं यही सब सोचता रहा और सड़क पर टहलता रहा। साँझ हो रही है। सूरज डूब रहा है। शहर की भव्यतम कालोनी में छाई खामोशी को भंग करता आइसक्रीम वाला टहल रहा है। लेकिन इससे बे-खबर बच्चे टी.वी. के सामने बैठकर युद्ध की बात कर रहे हैं। बच्चियाँ नफरत और आतंक का पाठ पढ़ रही हैं। तब अपनी दिनचर्या के मुताबिक धर्मराज अपने घर की ओर जा रहा है। मैं अक्सर सोचा करता हूँ कि इतना पैसा कमाने वाला धर्मराज बहुत खुश रहता होगा। लेकिन वह बहुत उदास है। मुझे अचरज हुआ और मैं उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। रेलवे क्रासिंग को पार करते समय अचानक मुझे बहुत तेज बदबू महसूस हुई। मैं इधर-उधर देखने लगा तो पाया कि कहीं कुछ सड़ा नहीं है। तभी सामने मुझे तिलस्मी दुनिया का खौफनाक दृश्य दिखाई पड़ा। सड़क पर चलता-फिरता धर्मराज टीन के एक बड़े कूड़ेदान के रूप में बदल गया। उसके ऊपर उठे हुए हाथ की तरह एक तख्ती टँगी हुई थी। उस पर लिखा था - 'शहर वालों, बोलो मैं सबसे ज्यादा भूखा हूँ।' आते-जाते लोग उसी में थूक रहे हैं। मैला फेंक रहे हैं। उसमें असंख्य कीड़े बिलबिला रहे हैं। यह सारी बदबू वहीं से आ रही है।

आप यकीन करें। न मैं किसी जादूगर के सामने था, न ही सपना देख रहा था। मैं खुली सड़क पर खुली आँखों से देख रहा था। डर के मारे मैं बहुत तेजी से पीछे की ओर भागा। बावजूद इसके कि सड़क पर लोग अचंभे से मेरी ओर देख रहे हैं, लेकिन मेरे पैरों में गजब की गति बढ़ती जा रही है।